एकात्म मानव दर्शन, शिक्षा और शिक्षक

रंजीता सिंह
एम.एड. द्वितीय वर्ष, शिक्षा विभाग, छत्रपति शाहूजी महाराज वि.वि., कानपुर

पंडित दीनदयाल उपाध्याय महान चितंक और संगठनकर्ता थे। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल में रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानववाद जैसी प्रगतिशील विचारधारा दी। एकात्म मानववाद मानव जीवन व सम्पूर्ण सृष्टि के एक मात्र सम्बन्ध का दर्शन है इसका वैज्ञानिक विवेचन पं० दीनदयाल उपाध्याय ने किया था। एकात्म मानववाद, राष्ट्रीय स्वयं सेवक का मार्गदर्शक दर्शन है। यह दर्शन – पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा 22 से 25 अप्रैल 1965 को मुम्बई में एक सभा में रखा गया। भारतीय जनसंघ के इतिहास में यह ऐतिहासिक घटना 1965 के विजयवाड़ा अधिवेशन में हुई। इस अधिवेशन उपस्थिति सभी प्रतिनिधियों ने करतल ध्वनि से एकात्म मानव दर्शन को स्वीकार किया। पंडित दीनदयाल जी व्यक्तिवाद, लोकतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद को पश्चिमी अवधारणा मानते थे। वह इनको भौतिक विचारधाराओं का स्वरूप मानते थे। पंडित दीनदयाल जी ने एकात्म मानवाद को सम्पूर्ण सृष्टि का एक मात्र दर्शन बताते हुए मानवशांति, राजनीतिज्ञ, सामाजिक और अर्थनीति के जिन सिद्धान्तों को जनता के सामने रखा वह अतुलनीय व अद्‌भुत है। वास्तव में पंडित दीनदयाल जी ने जो चिन्तन दिया वह मनुष्य का समग्र चिन्तन था और उन्होने मनुष्यता को वैश्विक चेतना का आधार माना। भारतीय ऋषि मुनियों ने जिस प्रकार कहा ''भद्रम पश्यन्ति ऋषयः'', ऋषि वह है जो लोक कल्याण को देखता है और लोक कल्याण वह है जो किसी व्यक्ति समुदाय के लिए नहीं व्यक्ति विश्व के लिए जगत और सबके कल्याण की कामना के लिए हो। पंडित दीनदयाल जी ने इन सारी विचारधारा को समग्र चिन्तन के रूप में देखा और जिस विचारधारा को मानव के सामने रखा वह चिन्तन केवल आर्थिक चिन्तन नहीं बल्कि सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक तथा सब प्रकार के उन्नयन का राह हमें दिखाता है वह एक दूसरे का पूरक चिन्तन है। (1)

विलक्षण बुद्धि, सरल व्यक्तित्व एंव नेतृत्व के अनगिनत गुणों के स्वामी भारतीय राजनीतिक क्षितिज के इस प्रकाशमान सूर्य ने भारतवर्ष में समतामूलक राजनीतिक विचारधारा का प्राण राष्ट्र को समर्पित कर दिए। अनाकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी दीनदयाल जी उच्च–कोटि के दार्शनिक थे। किसी प्रकार की भौतिक माया–मोह उन्हें छू तक नहीं सका। पण्डित दीनदयाल जी ने मैट्रिक और इण्टरमीडिएट दोनों ही परीक्षाओं में गोल्ड मेड़ल प्राप्त किये थें। इन्होने राष्ट्रधर्म पाञ्चजन्य और स्वदेश जैसी पत्र पत्रिकायें भी प्रारम्भ की थीं।

जन संध के राष्ट्रीय जीवन दर्शन के निर्माता दीनदयाल जी का उद्देश्य स्वतन्त्रता की पुर्नरचना के प्रयासो के लिय विशुद्ध भारतीय तत्व–दृष्टि प्रदान करना था। उन्होने भारत की सनातन विचार धारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुये देश को एकात्म मानववाद जैसी प्रगति शील विचारधारा दी। पंडित दीनदयाल जी को आर्थिक नीति के रचनाकार बताया जाता है। आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य सामान्य मानव

का सुख है, ऐसा उनका विचार था। विचार स्वातन्त्र के इस युग में मानव कल्याण के लिए अनेक विचारधारा को पनपने का अवसर मिला हैं। इसमें साम्यवाद, पूजीवाद, अन्त्योदय, सर्वोदय आदि मुख्य है। किन्तु चराचर जगत को सन्तुलित, स्वस्थ व सुन्दर बनाकर मनुष्य मात्र पूर्णता की ओर ले जा सकने वाला एकमात्र प्रक्रम सनातन धर्म द्वारा प्रतिपादित जीवन– विज्ञान, जीवन कला व जीवन दर्शन है। (2)

संस्कृतिनिष्ठा दीनदयाल जी के द्वारा निर्मित राजनैतिक जीवनदर्शन का पहला सूत्र हैं शब्दों में भारत में रहने वाला और इसके प्रति ममत्व की भावना रखने वाला मानव समूह एक जन है उनकी जीवन प्रणाली, कला साहित्य, दर्शन सब भारतीय राष्ट्रवाद का आधार यह संस्कृति है, इस संस्कृति में निष्ठा रहे। तभी भारत एकात्म रहेगा।

वसुधैव कुटम्बकम हमारी सभ्यता से प्रचलित है। इसी के अनुसार भारत में सभी धर्मों को समान अधिकार प्राप्त है। संस्कृति में किसी व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र आदि की वे बातें जो उनके मन, रूचि, आचार, विचार, कला–कौशल और सभ्यता का सूचक होता है पर विचार होता है तो दो शब्दों में कहें तो यह जीवन जीने की शैली है। भारतीय सरकारी राज्य पत्र (गजट) इतिहास व संस्कृति संस्करण में यह स्पष्ट वर्णन है। कि हिन्दुत्व और हिन्दूज्म एक ही शब्द है तथा यह भारत के संस्कृति और सभ्यता का सूचक है।

उपाध्याय जी पत्रकार तो थे ही चिन्तक और लेखक भी थे। उनकी असामायिक मृत्यु से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि जिस धारा में भारतीय राजनीति को ले जाना चाहते थे। वह धारा हिन्दुत्व की थी। जिसका संकेत उन्होने अपनी कुछ कृतियों में ही दे दिया था। तभी तो कालीकट अधिवेशन के बाद विश्व के प्रमुख मीडिया का ध्यान उनकी तरफ गया। दो योजनायें, राजनीतिक दायरी, भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन, सम्राट, चन्द्रगुप्त, जगतगुरू शंकरायचार्य, एकात्म मानववाद, राष्ट्रजीवन की दिशा और एक प्रेम कथा आदि प्रमुख पुस्तके थी।

जब हमें मनुष्य के लिए न्याय सुख की बात करते हैं तो हमें अच्छी तरह यह समझ लेना चाहिए कि मानव केवल एक भौतिक प्राणी नहीं है। जहाँ उसे ईश्वर ने शरीर दिया है वहीं मन दिया है, बुद्धि दी है, और इन सब से बढ़कर आत्मा दी है। शरीर–मन–बुद्धि और आत्मा इन सभी का समन्वित विचार न किया तो मानव सुखी नहीं हो सकेगा। भौतिक सुविधाओं के अम्बार लगने के बावजूद आज पश्चिमी जगत सुखी नहीं है– दुःखी है, भ्रमित है। मार्क्सवाद या साम्यवाद रोटी की समस्या को ही एकमेव समस्या मानकर उसका समाधान खोजते–खोजते अपने सबसे बड़े गढ़ सोवियत संघ में अपने अस्तित्व को खो दिया है। उसने आत्मा के अस्तित्व को ही नकारने की कोशिश की है। अतः यह प्रयोग सफल नहीं हो पाया। (5)

भारत में 'एकात्म मानववाद' ने पश्चिमी विचार दर्शन सम्बन्धी व्यवस्थाओं की अपूर्णता एकांगीपन असन्तुलन और व्यर्थता को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है। एकात्मवादी इस व्यवस्था ने हमें ऐसे विश्व राज्य के उदय की संभावना से अवगत करा दिया है जिसमें सभी देशों की राष्ट्रीय संस्कृतियां अपना–अपना विकास करते हुये मानवता को

समृद्ध बनाने में सहायक हो सकेगी और तब ऐसे मानव धर्म का विकास किया जा सकेगा जिसमें भौतिकता सहित संसार में सभी मजहब पंथ या रिलीजन अपनी पूर्णता के साथ अपना योगदान कर सकेंगे। (3)

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के मानवतावाद की प्रमुख विशेषता उनका एकात्मावाद सम्बन्धी विचार है। यद्यिप उन्होने मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिये उपर्युक्त सामाजिक आर्थिक व्यवस्था की उपयोगिता को स्वीकार किया है फिर भी उनका यह सुनिश्चित मत था कि मानवीय चेतना का निर्माण और विकास किया जाना अतीव आवश्यक है। इसका कारण यह है कि इसके अभाव में अच्छी से अच्छी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था भी मनोवांछित परिणाम नही दे सकती। मार्क्स के अनुसार जीवन का निर्धारण चेतना द्वारा नहीं होता मनुष्यों की सामाजिक चेतना उनके जीवन का निर्धारण करती है। अतः मार्क्स के अनुसार यह कहा जा सकता है कि मनुष्य की चेतना उन्हें उनके अस्तित्व का ज्ञान नहीं कराती, बल्कि इसके विपरीत उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को सुनिश्चित करती है। दूसरी ओर पंडित दीनदयाल उपाध्याय का विश्वास था कि जीवन या सामाजिक अस्तित्व और चेतना एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। फिर भी "उनमें निर्णायक तत्व चेतना का ही होता है। एकात्मक सम्बन्धी उनकी यह धारणा और उसकेक फलस्वरूप चेतना के विकास पर पंडित उपाध्याय द्वारा दिया गया बल उनके दृष्टिकोण को मार्क्स के विश्लेषण से पूरी तरह अलग कर देती है।

राष्ट्रीय जीवन का उदात्त स्तर हमें मानव जीवन के उस परंपरागत भारतीय जीवन मूल्यों का पुनः स्मरण कराता है जो प्रचलित आधुनिक पश्चिमी जीवन मूल्यों से कहीं अधिक भिन्न और श्रेष्ठ है। भारत के ये परम्परागत जीवन मूल्य व्यक्ति की अन्तरात्मा को झकझोर कर उसक यह विश्वास दिलाने में सक्षम है। कि भौतिक और अभौतिक या आध्यात्मिक तत्व एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए अकेले भौतिक पहलू पर आवश्यकता से अधिक बल दिये जाने से व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो तरह के जीवन में असंतुलन पैदा हो जाएगा। (2)

भारतीय संस्कृति की पहली विशेषता यह कि सम्पूर्ण जीवन का, सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है, उसका दृष्टि कोण एकात्मवादी है, टुकड़े टुकड़े में विचार करना विशेषज्ञ की दृष्टि से ठीक हो सकता है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। पंडित दीनदयाल जी की अनेक रचनायें जैसे सम्राट, चन्द्रगुप्त, जगतगुरू शंकराचार्य, भारतीय अर्थनीतिः विकास की एक दशा, विश्वासघात, एकात्म मानववाद, राष्ट्रचिंतन, तथा राष्ट्रजीवन की दिशा आदि है। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षा से तात्पर्य पिछली ज्ञान पूँजी के आधार पर ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि ही शिक्षा है। इनके अनुसार जीवन के समस्त पक्षों का विकास ही शिक्षा है।

शिक्षा और शिक्षक

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था सुदृढ़ थी फिर बौद्धकाल एवं मुस्लिम काल में शिक्षा धीरे–धीरे पतन के गर्त में जाने लगी और विभिन्न प्रकार के दोष व्याप्त हो गये। वुड

का घोषणा पत्र, मैकाले का विवरण आदि के बाद हम अन्तर्राष्ट्रीय बनने की हवा में ऐसे बहे कि हमारी राष्ट्रीयता क्षीण ही नही हुई बल्कि हम राष्ट्रीयता और स्वभाषा प्रेम को पिछड़े पन का लक्षण मानने लगे। राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोधी बताकर इस कदर प्रचारित किया गया है कि राष्ट्रीयता का नाम लेने में भी हमें आत्मग्लानि का अनुभव होने लगा। इसी मानसिकता से ग्रस्त होकर हम स्वदेशी भाषाओं की उपेक्षा कर अन्तर्राष्ट्रीय मानी जानी वाली अंग्रेजी भाषा के मोहपाश में बंध गये। अंग्रेजी भाषा का प्रभाव हमारे मन पर इतना हावी हो गया कि आज हम अपनी हिन्दी भाषा को उसके समक्ष तुच्छ एवं महत्वहीन मानने लगे हैं। (3)

'शिक्षा' शब्द का प्रयोग विस्तृत और संकुचित दोनों अर्थों में किया जाता है। विस्तृत अर्थ में अपने को सभ्य और उन्नत बनाना ही शिक्षा है और यह कार्य आजीवन चलता रहता है तथा शिक्षा के संकुचित अर्थ में उस शिक्षण से आशय है जो प्रत्येक युवा अपने व्यवसाय में लगकर जीवन में प्रविष्ट होने के पूर्व ग्रहण करता है।

शिक्षा प्रकाश है– वैदिक काल से ही भारत में शिक्षा का मूल तात्पर्य यह रहा है कि शिक्षा प्रकाश का स्त्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सच्चे मार्ग का प्रदर्शन करता है। एक विचारक का कथन है कि–

"ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं समस्ततत्वार्य विलोकिदक्षम्।
तेजोऽनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवृत्तिम सर्वजगत्त्रयेपि।

ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जो उसे समस्त तत्वों के मूल को समझने में समर्थ बनाता है तथा उसे सही कार्यों में प्रवृत्त करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्या से जिस ज्योति को प्राप्ति होती है वह संशयों का उच्छेदन करती है, कठिनाइयों को दूर हटाती है तथा जीवन के वास्तविक महत्व को समझने–योग्य बनाती है। (4)

पंडित दीनदयाल जी के विचारानुसार शिक्षा से हमें जो प्रकाश, परिज्ञान और नेतृत्व प्राप्त होता है। उससे हमारा पूर्ण रूपान्तर होता है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो हमे सफलता की ओर अग्रसर होने में सहायता प्रदान कर सके। शिक्षा के विभिन्न कार्य बतायें जैसे–स्वच्छता और आचार की सम्यक् कल्पना प्रदान करना दृष्टिकोण का विकास, रोजगार उपलब्ध कराना व्यक्तित्व विकास, न्याय प्रिय और दूरदर्शी, प्रखर बुद्धि, बोध क्षमता का विकास, त्रुटिपूर्ण व्यवहार से बचाव परिश्रमी आत्म संयम व राष्ट्रप्रेम का भाव उत्पन्न करना, आरोग्य, पर्यावरण संरक्षण, धर्मपरायणः सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक समझ का विकास सहयोग सहानुभूति परोपकार जैसे गुणों का विकास व सर्वांगीण विकास आदि ऐसी होनी चाहिए जो हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। शिक्षा परिवर्तन की उपेक्षा करती है और परिवर्तन शिक्षा के सहयोगी बनते हैं। परिवर्तन एक सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्वजनिक प्रक्रिया है देश की विभिन्न समस्याओं का समाधान शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में ही ढूंढने का प्रयत्न किया जाता है। अतः शिक्षा की आधारभूत संकल्पनाएं समकालिक परिस्थितियों पर अवलम्बित रहती है।

निष्कर्ष व सुझाव–

इस प्रकार कहा जा सकता है कि एकात्म मानवतावाद एक विश्व दृष्टि का विकास करना अर्थात 'वसुधैव कुटुम्बकम' पर आधारित जनता में सृजनात्मक शक्ति का जन्म देना है तथा जीवन को आत्म विश्वास की एक बलवती भावना और जीवन की उद्देश्य परता प्रदान करना है। जिससे शिक्षा के द्वारा एक सुन्दर व भव्य भारत का निर्माण किया जा सके तथा शिक्षक को पुनः गौरवान्वित किया जा सके।

निश्छल मानवतावाद न्याय का पक्षधर है यह आदर्शवाद प्रकृतिवाद, तथा आध्यात्मवाद के बीच युगों तक चलने वाले संघर्ष के दौरान विकसित हुआ और इस्लाम तथा ईसाई धर्म परिवर्तनों के अनेकानेक तत्वों का आत्मसात् करके समृद्ध हुआ है। यह प्रकृति के साहचर्य पर बल देता है तथा एक अध्यापक का कर्तव्य है कि वह 'जियो और जीने दो' की भावना का विकास विद्यार्थियों में करें और पंक्ति में खड़े अन्तिम व्यक्ति के विकास के लिए समान अवसर सुनिश्चित करें जिससे आज भी एकात्म मानव दर्शन शिक्षा व्यवस्था में वरदान साबित हो सके।

सुझाव––

1. वसुधैव कुटुम्बकम को महत्व दिया जाना चाहिए
2. शिक्षण–व्यवस्था में सुधार किया जाना चाहिए जैसे– व्यवसाय युक्त शिक्षा, अनुभव आधारित शिक्षा, बाल केन्द्रित शिक्षा तथा उपयोगितावादी शिक्षा पर बल
3. अन्त्योदय पर बल
4. पर्यावरण सुरक्षा व संस्कृति का हस्तान्तरण
5. प्राकृतिक जीवन जीने की कला का विकास
6. शिक्षक एक पथ प्रदर्शक के रूप में
7. समानता एवं स्वतन्त्रता पर बल
8. अवसरों की उपलब्धता पर बल
9. संवैधानिक मूल्यों के विकास पर बल
10. संर्वांगीण विकास पर बल

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुदेसिया, उमेशचन्द्र (2011), शिक्षाप्रशासन, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स ।
2. अलतेकर अनंत सदाशिव प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति वाराणसी अनुराग प्रकाशन ।
3. लाल, रमन चिहारी (2013&14), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त , मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन्स ।
4. शर्मा, महेशचन्द्र दीनदयाल उपाध्याय, कृतित्व एवं विचार, नई दिल्ली, प्रभात पेपर बैक्स ।